

लावारिस कौम

मां कहती रहती है, “तुम जैसे नालायक बेटे से लायक बेटी अच्छी”। मेरे मित्र ने आग्रह किया कि चल यार, दो-तीन दिन कल्याण कैम्प में चलकर रहते हैं। दुनिया का दूसरा रुख भी देखो। दोस्त का मर्दानगी भरा स्वभाव और मशविरा दोनों अच्छे लगे। ऑफिस से लौटकर वी.टी. से ट्रेन पकड़ी और कल्याण स्टेशन पहुंचकर कैम्प के लिये बस पकड़ी। बस काफी पुरानी थी। अन्दर बैठे यात्रियों की भाषा शहद सी मीठी। ड्राइवर से कुली तक सब सिन्धी।

बस से उतरकर बाजार पार करते हुए, सीरू चौक देखा। क्यों। भीड़ थी? हर तरह की दुकान मगर भाषा वही सिन्धी। चर्चगेट वाले घर में देखो तो दादी भी पोतों से टूटी-फूटी हिन्दी में बात कर रही होती है। कम पढ़ी-लिखी मां भी बच्चों से अंग्रेजी में बात करने का प्रयास करती है। बाप तो बस अध्यापक बनकर अंग्रेजी झाड़ता हुआ मिलता है जैसे मशीन से काफी निकल रही हो। इसलिए सारे घर में घुटन का अहसास होता है।

यहां पर तो मानो बरसात में भीगी मिट्टी की महक आ रही है। जापानी बाजार का रास्ता पूरा होते ही टेढ़े-मेढ़े, ऊंचे-नीचे, अंधेरे रास्ते शुरू हुए। इसीलिए किसी सिन्धी शायर ने खूब कहा है, ‘खड्डू खूबा वाट ते बती न का लैम्प’ (रास्ते में खड्डे तो हैं, परन्तु लाईट का नामोनिशान नहीं) परन्तु बातूनी मित्र के साथ रास्ता जल्दी कट गया।

रात को खाने के बाद झुण्ड बनाकर नीचे जमीन पर बैठ कर बातें करने लगे। मेरा दोस्त तो बातूनी है ही पर उसकी मां और बहिनें भी कम नहीं हैं। बातों-बातों में कल्याण कैम्प की चोरी की कई वारदातें बता दीं फिर भी रात को सोते समय घर के सारे दरवाजे खुले हुए थे। माताजी ने सिरहाने डंडा और टार्च रख छोड़ी थी। दोस्त के भाई की दोनों बाजुएं अखाड़े के मल्ल सी नजर आ रहीं थीं। मैं भी निडर होकर बाहर आंगन में सो गया।

अभी झपकी ली ही थी कि दोस्त की मां की चीख सुनाई दी, “ठहर जा मुए, जाता कहां है? छोड़ूंगी नहीं।”

मैं बाहें चढ़ाता हुआ उठ खड़ा हुआ। दोस्त महाशय निद्रा में लीन थे। अंदर कमरे में गया, माताजी से पूछा, “कहां गया चोर?” बोली, “मुआ स्नानघर में घुस गया है। धमकी भी दे गया है।”

मैंने माताजी के हाथ से डंडा लिया और स्नानघर के बाहर तैयार होकर खड़ा हो गया। आस-पड़ोस में सोये तीन-चार लोग उठकर आ गए। माताजी टार्च जलाकर खड़ी हुई और चेतावनी देते हुए बोली, "निकल बाहर।" मैंने डंडे को ज्यादा मजबूती से पकड़ा और चिल्लाया। स्नानघर का दरवाजा धीरे-धीरे खुलने लगा। अंदर से निकल रही हस्ती के ऊपर मैंने जोरदार वार किया तो खड़े हुए लोग ठहाका मार कर हंसने लगे। झेंपते हुए कहा, "अम्मा यह तो सूअर है, फिर आपको धमकी कैसे दे गया?"

"शायद कोई सपना देखा होगा?"

सूर्यदेव जब अपने उभरते हुए यौवन पर थे, तब कहीं सुबह नींद खुली। पता नहीं, कैम्प के पानी का प्रभाव था या रात को चोरी और डकैती के किस्सों ने पेट में खलबली मचाई थी, सुबह उठते ही शौचालय के लिये दौड़ लगाई। पर वहां तो लंबी लाईन थी। आखिर इंतजार के बाद नंबर आया। अभी बैठा ही था कि बाहर दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी। मैं सोच रहा था, कौन बदतमीज हो सकता है। इतने में दरवाजे पर फिर दस्तक हुई। मुझे गुस्सा तो खूब आया। जल्दी-जल्दी में फारिग होकर जोर से दरवाजे के दोनों पल्लू खोले तो 'कूं-कूं' करके एक सूअर अंदर घुस आया। हड़बड़ाकर कूदा और बाहर निकल आया। गुस्से में पीछे देखते हुए बोला, 'बदतमीज!' थोड़ी दूर खड़ी दोस्त की बहिन हंसी से दोहरी होती नजर आई। जाते-जाते शब्द सुनाई दिए जो वह अपनी सहेली को कह रही थी, "मुंबई के आदमी भी अजीब हैं।" सूअरों से बातें कर रहे हैं। मैं तो शरमा कर पानी-पानी हो गया।

चबूतरे पर चढ़कर अन्दर नजर डाली। देखने की कोशिश की दोस्त महाशय जागे या नहीं ताकि हाथ धोने के लिये पानी मांग सकूं। परन्तु मां अभी तक मीठे-मीठे स्वर में आवाज दे रही थी, "बेटा राज कपूर...दिलीप कुमार...अशोक कुमार..." साहबजादा तकिये को खींचकर मुंह पर डालते हुए बोला, "इतवार को तो आराम करने दो।" कड़वा घूंट पीकर आखिर दोस्त की बहिन से हाथ धुलाने का आग्रह किया। अंगोछे से हाथ पोंछते हुए अन्दर घुसा तो देखा महाशय चारपाई पर उठकर बैठे थे। पूछा, "दोस्त राज कपूर, दिलीप कुमार, अशोक कुमार, कम्बाई (तिरंगे...) के क्या हाल हैं?" दोस्त कुछ नाराज होते हुए बोला "कल्याण कैम्प की मजदूरों वाली जिंदगी को तीन-घंटे के लिये ही सही एक्टर ही है हल्का करते हैं। मां के लिये तो इस देश के हीरो यही हैं।" मैं नहाने के लिये जा रहा था, तो छोटी बहिन को तेल के लिये दौड़ाया जा रहा था। मेरे घर ऐसे समय पर तेल नहीं हो तो मैं गुस्से से लाल-पीला होकर घर ही सिर पर उठा लूं। पराए घर में चुप्पी का हथियार ही अच्छा था। थोड़ा सोचते हुए बोला, "एक दिन तेल नहीं लगाने से क्या हो जायेगा?"

मां बोली, "हां क्या हो जायेगा? मैं तो आठ दिन में एक बार अंगुली पर लेकर लगाती हूं।"

मैंने अभी राहत की सांस ली ही थी कि दोस्त महाशय बोल पड़े, "ऑफिस में नौकरी करती होती तो दिन में दो बार तेल लगाना पड़ता।" मेरे भी मुंह से पता नहीं कैसे निकल गया, "फिर तो ब्रिल क्रीम लगानी पड़ती।" "कभी देखी भी हैं ब्रिल क्रीम!" और दोस्त ठहाके लगाकर हंस पड़ा। मां के सिर पर हथेली रगड़ते हुए बोला, 'सुनती हो, ब्रिल क्रीम लगानी पड़ती। कभी देखी है ब्रिल क्रीम?' उसकी हंसी से मुझे ऐसा महसूस होने लगा जैसे खांसी का मरीज अपने सीने को सहला रहा हो। मां अकड़ कर बोली, "क्यों नहीं देखी है? अरे, तू नाज-नखरे नहीं करता है तो क्या कल्याण में रहने वाले सभी तेरी तरह हैं?" दोस्त की वही हंसी वातावरण में गूंजती रही। पता नहीं क्यों, मुझे सीने के किसी कोने में हल्का-हल्का दर्द महसूस होने लगा। दोस्त उठा और एक कोने में पड़े कागज के गमले में पड़े रंगीन फूलों से मिट्टी झाड़ते हुए बोला, "ये लोग मुझे ऐसे लगते हैं।"

मां बोली, "अच्छा बेटे, अब नाश्ता कर लो।" वह चार अण्डों का आमलेट और कड़क सिके परांठे (सिंधी कोकी) ले आई। मध्यम स्तर के परिवार में ऐसा नाश्ता शाही प्रतीक था कि मां का दिल कितना अमीर है।

कुछ समय तक दोस्त के साथ पुस्तकों के बारे में चर्चा होती रही। परन्तु जैसे-जैसे दिन चढ़ता जा रहा था मैं बेचैनी महसूस करने लगा। घर के गर्म होते छप्परों ने शायद मेहमान नवाजी नहीं सीखी थी।

शाम को टेकरी पर जाने का कार्यक्रम तय हुआ। काफी देर चलने के बाद क्या देखा, एक पुलिसमैन तेज कदमों से भागा जा रहा है। ऐसा लग रहा था जैसे पांवों को जमीने छूने नहीं देगा। मैं दोस्त के कान में फुसफुसाया, "है पुलिस वाला पर चाल चोरो की..." दोस्त ने कोई जवाब नहीं दिया और वहीं रुक गया। मां ने भी कांपते हुए शब्दों में "हे राम।" कहकर कदम थाम लिए। आंखों के सामने का दृश्य देखकर मैं चौंक गया। दिन-दहाड़े सरेआम कुछ दुष्टों ने एक नौजवान के पेट में छुरा घोंप दिया था। नौजवान की आंतड़ियां निकल कर बाहर आ गई थीं। खून से लथपथ, वह सड़क पर पड़ा तड़प रहा था। दूर खड़ी पब्लिक तमाशबीन बनकर सिर्फ सड़ आहें भर रही थी।

मैंने जल्दी से कदम आगे बढ़ाते हुए कहा, 'अगर अंतड़ियों को पेट में डाल दिया जाए तो शायद बच जाए।...' मेरे कंधों पर पड़ी मजबूत पंजों की जकड़ ने मुझे आगे बढ़ने से रोक दिया। मां और दोस्त ने एक साथ कहा, "यह कल्याण कैम्प है, क्यों खामखाह किसी से दुश्मनी मोल लेते हो।" मुझे ऐसा लगने लगा कि एक प्राणी की जान बचाना किसी फैलने वाली बीमारी से भी ज्यादा भयंकर है। दो हाथों के होते हुए भी कुछ न कर पाने की तड़प से व्यथित होकर मैं बोला, "मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है।"

दोस्त ने वही दर्द भरी हंसी हंसते हुए कहा, “कैम्प के शरणार्थी सिन्धी, पुरानी लोकोक्तियों को अपने खून से धोकर नया रंग दे रहे हैं।”

“क्या मतलब?”

इतनी देर में कितने ही पुलिस वाले वहां पहुंच चुके थे। खून किया गया प्राणी तड़प-तड़प कर, ठंडा होकर जमीन पर लेट चुका था। पुलिस मरने वाले को लेकर चली गई। क्षण भर में खेल खत्म हो गया। दोस्त ने गहरी सांस लेते हुए कहा, “बस इतने में ही चेहरे का रंग उड़ गया। यहां, यह रोजमर्रा की बात है।”

मेरा दम घुटने लगा, “बस! फिर कोई न्याय, कोई पुकार नहीं।”

“न्याय किसका? पुकारे कौन? किसी ने सिन्ध से पलायन के समय कहा था, ‘निधणका घोड़ा...(लावारिस घोड़े)’ मां कौनसी कहावत है वह?”

“गैबाना सवार” मां ने कहावत पूरी की, “निधणका घोड़ा अर्थात् लावारिस घोड़ों पर अनजाने सवार।” परन्तु घुटते-घुटते कोई दर्द पी गई। मुझे लगा कि सारी सिन्ध लावारिस बनकर मेरे सामने खड़ी हो गई हैं।

हम टेकरी की तराई में पहुंच चुके थे। चारों तरफ फैली वीरान घाटी सारे कैम्प को जैसे अपनी गोद में समाए हुए थी। कैम्प के कुछ-कुछ घरों में लाइटें टिमटिमा रही थीं। हम तीनों टेकरी के ऊपर चढ़ गए और चुपचाप बैठे रहे। हम काफी देर तक यूं ही खामोश बैठे रहे। सामने कैम्प के अब लगभग सभी मकानों की बत्तियां टिमटिमाने लगी थीं। मैंने खामोशी को तोड़ते हुए कहा, “दोस्त, सितारों के इस द्वीप के लिए मुझे आज दुःख हो रहा है।”

दर्द भरी झूठी हंसी हंसते हुए दोस्त ने उत्तर दिया, “दुख तो होगा ही।” पता नहीं क्यों, मेरी आंखों से दो आंसू टपके और सामने के द्वीप में चमकने लगे। पता नहीं कितने बिछड़े हुआओं के आंसू सितारे बनकर लावारिस शहर की बैरिकों को रोशन कर रहे थे।

अनुवाद : सुरेश बबलानी

